**ओ३म्**

**‘मनुष्य की चहुंमुखी उन्नति का आधार अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

मनुष्य के जीवन के दो यथार्थ हैं पहला कि उसका जन्म हुआ है और दूसरा कि उसकी मृत्यु अवश्य होगी। **मनुष्य को जन्म कौन देता है?** इसका सरल उत्तर यह है कि माता-पिता मनुष्य को जन्म देते हैं। यह उत्तर सत्य है परन्तु अपूर्ण भी है। माता-पिता तभी जन्म देते हैं जबकि ईश्वर माता-पिता व जन्म लेने वाली जीवात्मा के शरीर के निर्माण वा रचना सहित सभी व्यवस्था और उपाय करता है। क्या मनुष्य का जन्म बिना पुर्लिंग पुर्लिंग ईश्वर के सहाय के सम्भव है, इसका उत्तर नहीं में है। अब प्रश्न है कि ईश्वर व माता-पिता ने सन्तान को जन्म क्यों दिया है? माता-पिता तो यह कह सकते हैं कि यह मनुष्य का स्वभाव सा है कि युवावस्था में उसे विवाह की आवश्यकता अनुभव होती है और विवाह के बाद परिवार की वृद्धि की इच्छा से सन्तान का जन्म होता है। अन्य कुछ कारण भी हो सकते हैं। माता-पिता द्वारा सन्तानों से वृद्धावस्था व आपातकाल में सेवा-सुश्रुषा आदि की अपेक्षा भी की जाती है। ईश्वर जन्म लेने वाली जीवात्मा को पिता व माता के शरीर में प्रवेश कराने सहित उसका लिंग **‘स्त्रीलिंग वा पुर्लिंग’** निर्धारित करता है और माता के गर्भ में एक शिशु का शरीर रचकर उसे गर्भ की अवधि पूरी होने पर जन्म देता है। इसका उद्देश्य तो सामान्य व्यक्ति ईश्वर से पूछ नहीं सकता। हां, योगी व ज्ञानी अपने अध्ययन, विवेक, योग साधना व कुछ सिद्धियों से इसका यथार्थ उत्तर दे सकते हैं। वह उत्तर है कि जीवात्मा ज्ञान वा विद्या प्राप्त कर अपने अज्ञान को दूर करे। इसके साथ मनुष्य जन्म में अपने अकर्तव्य व अकर्तव्यों सहित उसे संसार, ईश्वर व जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान भी होना चाहिये। जीवात्मा, ईश्वर व अनेकानेक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर को प्राप्त करना मनुष्य जन्म में ही सुलभ है। अतः ईश्वर जीवात्माओं को मनुष्य आदि अनेक योनियों में उसके पूर्वजन्म के कर्मानुसार जन्म देता है और पुराने कर्मों का भोग करने तथा नये कर्मों के आधार पर मृत्यु के पश्चात जीवात्मा के नये जीवन अर्थात् पुनर्जन्म की योनि का निर्धारण करता है।

 मनुष्य जीवन केवल शरीर को पोषण देने, स्वादिष्ट भोजन करने व धन स्म्पत्ति अर्जित कर सुख-सुविधाओं की वस्तुओं का संग्रह करने मात्र के लिए ही नहीं मिला है। यह काम अवश्य करने हैं परन्तु सबसे महत्वपूर्ण इस संसार सहित ईश्वर व जीवात्मा के सत्य ज्ञान व रहस्यों को जानकर ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना को भी करना होता है। इन सब कामों के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है जो हमें माता-पिता के बाद आचार्यों व शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त होता है। यदि जीवन में शास्त्रों का ज्ञान व सदाचरण नहीं है तो वह जीवन मनुष्य का होकर भी पशु के समान, एकांगी जीवन, ही कहा जाता है। पशु का काम खाना-पीना व अपने स्वामी की सेवा करना होता है। यदि मनुष्य भी धनसंग्रह करने व शारीरिक सुविधाओं के लिए ही जीवित रहता है तो यह पशुओं के समान ही है। सत्य शास्त्रों के ज्ञान से जो विवेक प्राप्त होता है वही मनुष्य की वास्तविक पूंजी होता है। यह ज्ञान व इसकी प्रेरणा से किए गये सदकर्म न केवल इस जीवन अपितु भावी अनेकानेक जन्मों में भी सहयोगी, लाभदायक व सुखप्रापक होते हैं। अतः सभी मनुष्यों का मुख्य कर्तव्य यह है कि वह अपने अज्ञान व अविद्या का नाश करने के लिए योग्य आचार्यों से वेदाध्ययन वा ज्ञान की प्राप्ति करे।

 यदि हम इतिहास पर दृष्टि डाले तो हमें इतिहास में बड़े-बड़े ज्ञानियों, धर्मपालकों, ऋषियों, आचार्यों के नाम मिलते हैं जिनका नाम श्रद्धा से लिया जाता है। ऐसे लोग ही मानव समुदाय का आदर्श हुआ करते हैं। इतिहास में प्राचीन महापुरुषों में श्री रामचन्द्र जी व श्री कृष्ण जी का नाम प्रसिद्ध होने के साथ उनको लोग आज भी श्रद्धा-भक्ति से स्मरण करते हैं। इसका कारण उनके कार्य व जीवन का आचरण है जो उन्होंने किया था। इन महापुरुषों के जीवन को प्रकाश में लाने का काम महर्षि वाल्मीक और महर्षि वेदव्यास जी ने रामायण व महाभारत ग्रन्थों की रचना कर किया। यह सभी लोग विद्या में सर्वोच्च थे। आज भी हम महर्षि दयानन्द, स्वामी शंकराचार्य, आचार्य चाणक्य, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, पं. रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह, सरदार पटेल आदि को स्मरण करते हैं तो इसका कारण भी इन लोगों का ज्ञान व उसके अनुरुप किये गये कार्य हैं। इन उदाहरणों का अभिप्राय यही है कि मनुष्यों को पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर श्रेष्ठ कार्यों को करना चाहिये जैसा कि इन कुछ महापुरुषों ने किये हैं। ऐसा करके हम अपने अपने जीवन को सफल व सफलतम बना सकते हैं।

 शास्त्रों ने बताया है कि विद्या वह होती है जो मनुष्यों को दुःखों से मुक्त करती है। इससे यह आभाष मिलता है कि मनुष्यों के दुःखों का कारण अविद्या व असत् ज्ञान होता है। हम संसार में भी देखते हैं कि असत् ज्ञान व ज्ञानहीनता निर्धनता का मुख्य कारण होता है। अज्ञानी व्यक्ति अन्याय व शोषण से पीडि़त भी होता है व स्वयं भी ऐसा ही आचरण दूसरों के प्रति करता है। ऐसा भी देखा जाता है कि जिस व्यक्ति को ज्ञान हो जाता है वह न केवल अपने जीवन का सुधार करता है अपितु अपने साथ अपने सम्पर्क में आने वाले अनेकों का भी उससे सुधार होता है। आजकल संसार में नाना विषयों का ज्ञान उपलब्ध है। यह सांसारिक ज्ञान अपरा विद्या कहलाता है। इस विद्या से मनुष्य अनेकानेक काम करके धन व सम्पत्ति व अनेक पदार्थों का सृजन कर सकता है परन्तु अपनी आत्मा को उत्तम नहीं बना सकता। आत्मा को उत्तम व श्रेष्ठ बनाने के लिए वेदों व वैदिक साहित्य की शरण में जाना पड़ता है। वेदों का आत्मा व ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान परा विद्या कहलाती है। इसे आध्यात्मिक विद्या भी कह सकते हैं। इस विद्या से मनुष्यों को अपने यथार्थ कर्तव्यों का बोध होता है। इस ज्ञान व विज्ञान को प्राप्त होकर मनुष्य अपरिग्रह को अपनाता है और आत्मा व ईश्वर का चिन्तन करते हुए ईश्वर का अधिकतम व पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है जिससे उसकी अविद्या नष्ट होकर वह वैदिक मान्यता के अनुसार जन्म व मरण के दुःखों से 4.32x2x360x100 = 3,11,040 अरब वर्षों तक के लिए मुक्त होकर ईश्वर के सान्निध्य में पूर्ण आनन्द का भोग करता है। यही मनुष्य जीवन का वास्तविक स्वर्ग है जिसका विस्तृत वर्णन सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में उपलब्ध होता है।

 महर्षि दयानन्द वेद सहित प्राचीन काल से उनके समय तक ऋषियों व विद्वानों द्वारा रचित सभी शास्त्रों व ग्रन्थों के अपूर्व विद्वान थे। संसार का सुधार व उन्नति करने के लिए उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। वेद ज्ञान के आधार पर आपने आर्यसमाज के दस नियमों की रचना की जिसमें से आठवां नियम है कि **‘अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।’** यह नियम सर्वमान्य नियम है। इसका महत्व सभी जानते हैं। इस पर किसी को विवाद नहीं है। परन्तु विद्या का क्षेत्र कहां तक है यह बहुतों को ज्ञात नहीं है। **पूर्ण विद्या की प्राप्ति वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन कर ही सम्पन्न होती है। वेदों के ज्ञान से रहित मनुष्य पूर्ण ज्ञानी नहीं कहा जा सकता।** अतः जीवन की पूर्ण उन्नति के लिए संसार के अनेकानेक विषयों का अध्ययन करने के साथ वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन भी अवश्य ही करना चाहिये। जो करेंगे उनको आत्मा के विकास सहित ईश्वर की प्राप्ति का लाभ होगा और परजंन्म की उन्नति होगी। जो नहीं करेंगे वह इन लाभों से वंचित रहेंगे। महर्षि दयानंद के आर्यसमाज के तीसरे नियम में प्रस्तुत शब्दों का उल्लेख कर लेख को विराम देते हैं। उन्होंने लिखा है कि **‘वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना व सुनना सुनाना सब आर्यों (श्रेष्ठ मनुष्यों) का परम धर्म है।’**

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**